तृतीय अध्याय

विवेच्य नाटकों में प्रस्तुत अभिनेयता

''तृतीय आध्याय''
: ''विवेच्य नाटको में प्रस्तुत अभिनेयता'' :

3.1 'अभिनय' शब्द का कोशगत अर्थ :

अभिनय शब्द का अर्थ अनेक ग्रंथों में अलग-अलग ढंग से दिया हुआ लक्षित होता है । इस का कोशगत अर्थ इस प्रकार है - 'दिनमान हिंदी शब्द कोश' में अभिनय करके दिखाना ।'' [1] 'हिंदी शब्दसागर में' अभिनय शब्द का अर्थ हैं- ''दूसरे व्यक्तियों के भाषण तथा चेष्टा को कुछ काल के लिए धारण करना । जैसे - स्वांग, नकल, नाटक का खेल ।'' [2] 'नालंदा विशाल शब्दसागर' में अभिनय शब्द का अर्थ इस प्रकार से दिया है - ''बनावटी हावभाव द्वारा किसी विषय का वास्तविक अनुकरण करके दिखलाना । हृदय के भावों को प्रकाशित करने के निमित्त अंगोंद्वारा की गई चेष्टाएँ ।'' [3] 'राजपाल हिंदी शब्दकोश' में अभिनय शब्द का अर्थ है - ''अंगिक चेष्टाओं का कलात्मक प्रदर्शन, अनुकरण, अंगिक चेष्टाएँ, नाटक खेलना ।''[4]

उपर्युक्त कोशगत अर्थों को देखनेपर यह स्पष्ट होता हैं कि 'अभिनय' याने भावों का प्रकाशन ।

3.2 'अभिनय' शब्द की व्युत्पत्ति :

अभिनय शब्द की व्युत्पत्ति अभि + नी धातु से मानी गयी है । 'अभि' का अर्थ है - 'की ओर' तथा 'नि-नय' अर्थात - 'ले जाना' अथवा 'वहन करना' । दर्शकों के सामने जो क्रियाएँ दर्शाई जा रही हैं, उन क्रियाओं की वास्तविकता की ओर ले जानेवाली क्रिया ही अभिनय कहलाती हैं । तत्वत: नाटक अभिनीत होने के लिए ही लिखा जाता है । यदि उसका अभिनय न हो तो नाटक से दर्शकों का परिचय कैसे होगा ? दर्शक नाटक से आनंदानुभूति कैसे प्राप्त करेंगे ? अभिनय के कारण ही नाटक को अभिनय मूलक माना गया है । नाटक में अनुकरण की प्रधानता होती है और यह अनुकरण अभिनेता द्वारा किया

---

1. *संपा. श्री. शरण - दिनमान हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ - 34*
2. *संपा. श्यामसुंदर दास - हिंदी शब्द सागर, पृष्ठ - 273*
3. *संपा. श्री. नवलजी - नालंदा विशाल शब्दसागर, पृ. - 72*
4. *संपा. डॉ. हरदेव बाहटी - राजपाल हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ - 45*

जाता है । कुछ विद्वान अभिनय की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताते हैं - ''बीन धातु'' और 'अति उपसर्ग के योग से ही अभिनय शब्द का निर्माण हुआ है । इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है - 'अभिनीयते इति अभिनय:' अर्थात - साक्षात्कारात्मक रूप से नाटकीय कार्यव्यापार को दर्शकों तक पहुँचाना अभिनय कहलाता है ।'' [1]

3.3 अभिनय की परिभाषाएँ :

4.3.1 अभिनय की अंग्रेजी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषा :

अमरिका के एक प्रख्यात नाट्यचार्य जॉन बॅरीनूत के अभिनय के संबंध में विचार हैं - ''अभिनय कला रंगमंचपर सत्य का आभास निर्माण करनेवाली कला है । यह आभास निर्माण करते समय रंगमंचपर क्रियाव्यापार करनेवाले पात्र प्रत्येक शब्द बोलते समय, प्रत्येक क्रिया करते समय परिस्थिति को ध्यान में रखकर परिस्थिति के अनुरूप ही बोलना या करना आवश्यक है । वे जो बोलते हैं वहीं करते हैं, उनके क्रिया व्यापार में जो भी प्रस्तुत हो रहा है, वही सत्य हो रहा है और मैं 'मै' नहीं है जिस का अभिनय अभिनीत कर रहे हैं 'वह' है । ऐसा विश्वास दिखायी देना आवश्यक है । विशेषत: रंगमंचपर निर्मित प्रसंग प्रथम बार ही प्रस्तुत हो रहा हो तो उस समय 'अभिनय कला' की कसौटी लगती है । क्योंकि कार्यव्यापार की सहजता ही कला का प्राण हैं ।'' [2] सर हेन्री अर्विंग कहते हैं - ''नाटककार द्वारा निर्मित काल्पनिक व्यक्तियों को शरीरबद्ध करना कला और उनके दिल की उच्छंखृलता जनमानस तक पहुँचाना अभिनय कला की जिम्मेदारी है ।'' [3] लॉरेट टेलर के अनुसार - ''मन मानस में निर्मित में निर्मित व्यक्तियों का जैसा का वैसा शारीरिक चित्रण करना और उनका चित्रण करते समय अपने भावविश्व में उठे तरंगों को दर्शकों तक पहुँचाना अभिनय है ।'' [4]

---

1. *डॉ. सीताराम झा 'श्याम' - नाटक और रंगमंच, पृष्ठ - 157*
2. *डॉ. गजानन जहांगीरदार - अभिनय कसा करावा, पृष्ठ - 27-28*
3. *डॉ. गजानन जहांगीरदार - अभिनय कसा करावा, पृष्ठ - 28*
4. *डॉ. गजानन जहांगीरदार - अभिनय कसा करावा, पृष्ठ - 28*

3.3.2 अभिनय की संस्कृत विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषा :

'अभिनय' शब्द की व्यत्पत्ति बताते हुए नाट्यशास्त्र में लिखा गया है कि "'अभि' उपसर्ग से प्रपणार्यक 'नी' अ धातु से आयोजित होनेपर 'अभिनय' शब्द निष्पन्न होता है । आगे लिखा गया है कि जिसके सांगोपांग प्रयोग द्वारा नाट्य के अनेक अर्थों का श्रोता या सामाजिक को हृदय से विभावन या रसास्वादन कराया जाए उसे अभिनय कहते हैं ।"[1] संस्कृत विद्वानों का अभिमत देखने से स्पष्ट होता है कि साक्षात्कारात्मक रूप से नाटकीय कार्य-व्यापार को दर्शकों तक पहुँचाना ही अभिनय है ।

3.3.3 अभिनय की हिंदी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाएँ :

डॉ. दशरथ ओझा के अनुसार - "अभिपूर्वक 'नी' धातु में 'अच' प्रत्यय के योग से 'अभिनय' शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है - हृदय के भावों को प्रकाशित करनेवाली अंगिक चेष्टा स्पष्टत: बाह्य चेष्टाओं के साथ-साथ हृदयस्थ भावों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्ति भी अभिनय द्वारा ही अभिष्ट है ।"[2] मराठी के प्राख्यात नाट्याचार्य प्रा. यशवंत केळकर के विचार हैं - "नाटककार के नाटक को दर्शकों तक पहुँचाने का कार्य याने 'अभिनय' हैं ।"[3] अभिनय के संदर्भ में अपने विचार स्पष्ट करते हुए जीवन प्रकाश जोशी लिखते है - "किसी नाट्यकृति का जनसाधारण के सामने कलात्मक प्रस्तुतिकरण उसका 'अभिनय' कहलाता है ।"[4] सहज एवं सुलभता से अभिनय के कार्य को समझाते हुए डॉ. लक्ष्मीनारायन लाल ने अभिनय की परिभाषा इस प्रकार दी हैं - "जो अपनी कला से दर्शकों को नाटक और स्वयं की किसी विशेष विश्व में ले जाए उस कला का नाम अभिनय है और उस कला का कलाकार अभिनेता है ।"[5]

अभिनय के बारे में विद्वानों के उपर्युक्त विचारों को देखने से निष्कर्षत: स्पष्ट है कि नाटककार अपने मन मानस में उठे विचारों को शब्दबद्ध करता है तथा उन विचारों के अनुरूप पात्रों की कल्पना भी करता है और उन विचारों एवं पात्रों की मनोदशा का शरीर के विभिन्न अवयवों की साध्यता से दर्शकों तक पहुँचाना ही 'अभिनय' है ।

---

1. *डॉ. गजानन जहांगीरदार - अभिनय कसा करावा, पृष्ठ - 148*
2. *डॉ. दशरथ ओझा - प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच, पृष्ठ - 30*
3. *प्रा. यशवंत केळकर - नाट्य निर्मिति, पृष्ठ - 85*
4. *जीवन प्रकाश जोशी - नाटककार मोहन राकेश, पृष्ठ - 18*
5. *डॉ. लक्ष्मीनारायन लाल - रंगमंच देखना और जानना, पृष्ठ - 81*

3.4 नाटक और अभिनय का संबंध :

नाटक की सफलता अभिनय की दृष्टि से ही नापी जाती हैं। अत: नाटक और अभिनय का बहुत ही गहरा संबंध है। अभिनेता को अपनी भावमुद्रा और गति का ऐसा कलात्मक प्रयोग करना आवश्यक है कि रंगमंच बोलती-चलती तस्वीर का रूप धारण करें। आचार्य श्यामसुंदर दास के अनुसार - "अभिनय नाटक का प्राण है और उसके बिना नाटक में सजीवता आ ही नहीं सकती।"[1] नाटक की रचनाअभिनय के निमित्त ही की जाती हैं। नाटक में अभिनय की अत्यंतिक आवश्यकता समझाते हुए नेमिचंद्र जैन कहते हैं - "अभिनय प्रदर्शन के बिना नाटक की सार्थकता अथवा संपूर्णता नहीं है।"[2]

अभिनेयता नाटक का ऐसा सृजनशील तत्व है जो अन्य तत्वों से भी प्रत्यक्ष रूप से अपनी अभिव्यक्ति का सृजन करता है। नाटककार एवं निर्देशक मंचपर अव्यक्त रूप में ही छाए रहते हैं और अभिनय के माध्यम से ही व्यक्त होते हैं। अन्य किसी भी मंचीय तत्व की तुलना में अभिनय ही दर्शकों के आकर्षण का केंद्र रहता है इसलिए कि वह सजीव रूप में अपनी कला को प्रकट करता है। परिणामत: नाट्यकला अधिक विश्वसनीय एवं वास्तविक महसूस होती हैं।

भारतीय आचार्यों ने नाटक के तत्वों के अंतर्गत अभिनय को महत्त्वपूर्ण तत्व माना है, लेकिन पाश्चात्य आचार्यों ने इस तत्व को मुख्य तत्व के रूप में स्वीकार नहीं किया। अभिनय के संबंध में क्षेमचंद्र सुमन कहते हैं - "यह नहीं भूलना चाहिए की नाटकों की रचना रंगमंच के लिए होती हैं। जो नाटक रंगमंच पर अभिनीत नहीं किए जा सकते वे वस्तुत: नाटक कह जाने के उपयुक्त नहीं।"[3]

अभिनेयता नाटक की विशेषता है, जिससे नाटक को नाटकत्व प्रदान किया जाता है। सारे कथानक, नायक और पात्र, संवाद तथा भावों की योजना एवं अभिव्यक्ति अभिनय के माध्यम से संभव होती हैं। अभिनय से पाठकों तथा दर्शकों की जिज्ञासा और कुतुहल अंत तक बना रहता है। अभिनेता का संबंध कथोपकथन के साथ आता है। अत: अभिनय की सबसे बडी विशेषता है कि सामाजिकों के चित्त को आकर्षित करना। इस प्रकार नाटक और अभिनय का संबंध चोली-दामन जैसा स्पष्ट होता है।

---

1. *आ. शामसुंदर दास - साहित्यलोचन, पृष्ठ - 103*
2. *नेमिचंद्र जैन - रंगदर्शन, पृष्ठ - 35*
3. *क्षेमचंद्र सुमन -*

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि अभिनय वह चीज है जिस के जरिए नाटक के मूल विषय, विचार एवं भावों को दर्शकों तक पहुँचाया जाता है। डॉ. लक्ष्मीनारायन लाल के शब्दों में "अभिनयति, हृदयगत् भावान् प्रकाशयति" अर्थात - मन के भाव को प्रकट करनेवाली अंगिक चेष्टाओं द्वारा किसी विषय अथवा व्यक्ति का अनुकरण करके प्रदर्शित करना अभिनय कहलाता है।"[1]

3.5 अभिनय के गुण :

'अभिनय दर्पण' में अभिनय के चार गुणों का उल्लेख किया हुआ दिखायी देता है। जैसे -

3.5.1 अनुकरण नैपुण्य :

अनुकरण मानव की प्राकृतिक प्रकृति है। मनुष्य जब अपनी बौद्धिकता महसूस करने लगता है तब से वह अनुकरण करना शुरू करता है। परंतु नाटक में जब वह अनुकरण करता है तब किसी भी बात का अनुकरण जस की तस अर्थात पूर्णरूपेन स्वाभाविक दिखायी देना आवश्यक हैं। नाटक में शारीरिक अनुकरण तो अवश्यक है ही, परंतु साथ - साथ मानसिक अनुकरण भी दिखाना आवश्यक है। उदा. - शोक न होते हुए भी अश्रु प्रवाहित करने पडते हैं तथा शोकाकुल व्यक्ति के सदृश्य अनुभाव व्यक्त करना पडता है।

3.5.2 दृश्य सौष्ठव :

नाटक मनोरंजन का एक साधन है। अत: दर्शकों के मन में आनंद का संचार करने के लिए दृश्य सौष्ठव अनिवार्य है। अर्थात किसी नाटक में स्थित पात्रों के गुणों जैसाही अभिनेता का व्यक्तित्व हो। परिणामस्वरूप उस अभिनेता के अभिनय को देखकर दर्शकों का चित्त प्रसन्न हो जाता है।

3.5.3 श्रृतिमाधुर्य :

दृश्य सौष्ठव के होते हुए भी श्रृतिमाधुर्य के आभाव में अभिनय दर्शक को आनंद प्रदान नहीं कर सकता। वाचिक अभिनय के लिए सभी गुण तथा भाव श्रृतिमाधुर्य के लिए आपेक्षित हैं। अभिनेता में

---

1. डॉ. लक्ष्मीनारायन लाल - रंगमंच और नाटक की भूमिका, पृष्ठ - 58

स्वर-संयम, शुद्ध उच्चारण एवं उच्चारण की क्षमता आवश्यक हैं। उदात्त - अनुदात्त स्वरों में आरोह - अवरोह, वाणी में माधुर्य, धैर्य, अनुकूल स्वर, प्रसंगानुकूल स्वाभाविकता तथा कृत्रिमता एवं विकृति का आभाव अभिनय का सौंदर्य वर्धन करते हैं ।

3.5.4 परिहास :

नाटक में दर्शकों का मनोरंजन करने के लिए तथा मनोरंजन के माध्यम से दर्शकों को सम्प्रेषित करने के लिए परिहास तथा हास्य-व्यंग्य आदि का अश्रय लिया जाता हैं। परिहास का अभिजात्य स्वरूप है, वाचिक अभिनय में व्यंग्य वक्रोक्ति तथा कुतूहल प्रधान सुचनाओं की आश्चर्यजनक परिणति होती हैं । वेशभूषा की विकृति द्वारा भी सामाजिकों का मनोरंजन किया जाता है लेकिन वह उतना-स्तरीय सिद्ध नहीं होता है ।

3.6 अभिनय के प्रकार :

रंगशाला से बाहर मनुष्य का जीवन इतना विस्तृत और गहरा है कि उसे शब्दों में पकडना अत्यंत कठिन हैं । किंतु रंगमंच पर उसे अभिनय के द्वारा पकडने की कोशिश की जाती हैं। अभिनय संबंधी हमारा अधुनिक रंगमंच पाश्चात्य रंगकर्मियों से प्रभावित है फिर भी भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में अभिनय को निम्न रूपों में विभाजित किया हैं-

1. आंगिक अभिनय ।
2. वाचिक अभिनय।
3. सात्विक अभिनय।
4. आहार्य अभिनय।

उपर्युक्त चार अभिनय प्रकारों का मंचीयता की दृष्टि से परस्पर संबंध स्पष्ट करते हुए भरतमुनि ने लिखा है - "अभिनेता को चरित्र की आयु तथा स्वभाव के अनुरूप वेशभूषा अर्थात रूपसज्जा हो,

रूपसज्जा के अनुरूप क्रियाएँ हों और क्रियाओं के अनुरूप क्रियाएँ हों और क्रियाओं के अनुरूप वाणी तथा वाणी के अनुरूप भावनाओं की अभिव्यक्ति हो ।"[1]

भारतीय नाट्यचिंतन में जिस अंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य आदि चार प्रकार के अभिनय का वर्णन किया है उस का सम्मिश्रण भगवान शंकर में माना है । "यह समस्त विश्व जिनका अंगिक अभिनय है, यह संपूर्ण वाङ्मय जिनका वाचिक अभिनय है । ये तारांगण जिनका अभिनय है, यह सात्विक अभिनय स्वरूप भगवान शंकर में शक्ति और विवेक का अमृत पचायें थें ।"[2] अर्थात - डॉ. लक्ष्मीनारायन लाल शिव को अभिनय की मूर्ति एवं सर्वश्रेष्ठ अभिनेता मानते हैं ।

सुरेंद्र वर्मा के नाटकों में इन चार प्रकारों की साह्यता से प्रस्तुत अभिनय हम निम्न रूप से देखते हैं -

3.6.1 आंगिक अभिनय :

आंगिक अभिनय का अर्थ है - शरीर, मुख और चेष्टाओं से कोई भाव या अर्थ प्रकट करना । सिर, कटी, वक्ष, पार्श्व और चरण के द्वारा किया जानेवाला अभिनय शरीर या अंगाभिनय कहलाता है । आँख, भौंह, नाक, अधर, कपोल, टोडी आदि के द्वारा किया गया अभिनय मुखज या उपांगाभिनय कहलाता है । जिसमें पूरे शरीर की विशेष चेष्टाएँ दिखाना, उसे चेष्टाकृत अभिनय कहते हैं । यह सभी प्रकार के अभिनय विशेष रस, भाव तथा संचारी भाव के अनुसार किए जाते हैं ।

आंगिक अभिनय का संबंध नाटक में निहित घटनाओं से पात्रों की शारीरिक हालचाल, हावभाव, क्रियाकलाप, आदि से हैं । उपर्युक्त दृष्टि से 'आठवाँ सर्ग', 'शकुंतला की अंगूठी', 'सेतुबंध', 'द्रौपदी' और 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' इन नाटकों में अंगिक अभिनय से अनुरूप घटनाओं का चुनाव तथा पात्रों का विकास होता दिखायी देता है ।

सुरेंद्र वर्मा के 'आठवाँ सर्ग' नाटक में पात्रों के क्रियाव्यापारों से आंगिक अभिनय की झलकी हुयी घटनाएँ निम्नांकित रूप में प्रस्तुत की गयी है । नाटक के प्रथम अंक की शुरूआत में ही नाटक की सहनायिका

---

1. *आ. भरतमुनि - नाट्यशास्त्र, आध्याय क्र. 8, श्लोक 8 से 10*
2. *डॉ. लक्ष्मीनारायन लाल - रंगमंच और नाटक की भूमिका, पृष्ठ - 56*

हाथ में कपडा लेकर मंच पर लगाए गए दृश्य सज्जा को झाडने-पोंछने में मग्न दिखायी देती है । जैसे - "प्रियवंदा, पारिचारिका का भितरी द्वार से नूपुरों की झंकारों सहित प्रवेश । हाथ में वस्त्रखंड । आसनों को झाडने-पोंछने लगती हैं ।"[1] प्रियंवदा का प्रस्तुत कार्यव्यापार दासी होने का रूप खडी सजीवता से दर्शाता है । प्रस्तुत नाटक में शरीर के उपांगों को भी कार्यव्यापार में लाने का प्रयास प्रियंवदा द्वारा नाटककार ने किया है । कीर्ति भट्ट अपने प्रेम का बयान प्रियंवदा के सामने जब करता है, तब प्रियंवदा ने शरीर का संचालन बहुत ही उत्कृष्टता से किया हुआ दिखायी देता है । जैसे -

" संध्या समय कृपा कर मेरे घर पधारो ।
की मधुर झंकार के साथ मेरे अशोक पर पद
प्रहार कर दो, अपने सुगन्धित मुँह से मदिरा
का एक घूँट मेरे बकूल पर डाल दो, ताकि दोनों
हरे-भरें हो जाएँ .....

प्रियंवदा : (तनिक तिरछी हो, कटि पर हाथ रख, आँखों में आँखे डाल अत्यन्त मृदू स्वर में) कीर्ति भट्ट ।"[2]

इसके साथ ही प्रस्तुत नाटक में नाटककार नेआंगिक अभिनय का चित्रण अनेक प्रसंगो में खूबी के साथ किया है । जैसे - अनसूया का कूचियाँ पोंछना, लत्तरे लाँटना, प्रियंगुमंजरी का दर्पण में अपना प्रतिबिंब मुँह आडा-तिरछा कर के देखना, कालिदास के द्वारा प्रियंगुमंजरी के बाल सहलाना, कीर्तिभट्ट का झुककर प्रणाम करना आदि बातें अंगिक अभिनय की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण दिखायी देती हैं ।

सुरेंद्र वर्मा का 'शकुंतला की अंगुठी' नाटक विविध अभिनय के प्रकारों, अभिनय शैलियों तथा पात्रों के क्रिया व्यापार के साथ अत्यंत रोचक बन पडा है । इस नाटक की यह विशेषता हैं कि यह नाटक पढने में जितना आसान लगता है मंचित करने में उतना ही कठिन है । नाटक के कुछ चरित्र अपने किरदार के साथ-साथ 'शाकुन्तलम्' नाटक के कभी एक कभी दो या एक साथ दो-दो किरदार भी निभा रहे हैं ।

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - आठवाँ सर्ग, पृष्ठ - 17*
2. *सुरेंद्र वर्मा - आठवाँ सर्ग, पृष्ठ - 19-20*

प्रस्तुत नाटक में कायिक अभिनय की प्रच्युरता स्पष्ट दिखायी देती है । नाटक की शुरूआत में ही कुमार अपने सह कलाकारों के इंतजार में बार-बार कलाई की घडी और दरवाजे की ओर देखता हुआ दिखता है जिससे उसके चहरे की नाराजगी और क्रोध की झलक स्पष्ट दिखायी देती है । और एक दृश्य के अंतर्गत टाईगर जिसका आदर्श हिंदी फिल्मी नायक है । वह उन्हीं के अंदाज और चाल-ढाल में आकर कुमार को मिलटरी सैल्युट लगाता है । जैसे - "टाइगर : (एटेशंन की मुद्रा में, मिलिटरी सैल्यूट के साथ) कुमार को टाईगर का सलाम सर ।"[1] इसी नाटक के तीसरे अंक में कुमार अपनी सहनायिका कनक को प्यार के लिए आँखों का महत्त्व समझाते हुए अपनी आँखें, खुर, घुटनों, पैर का उपयोग बहुत खूबी से करता है । जैसे -

"कनक : छोडो मुझे ! मैं अपने आधीन नहीं ।
(कुमार अपना संतुलन छोडकर बीचमें ही बरस पडता है ।)
कुमार : अपनी आँखों से कहिए की मैं अपनी अधीन नहीं ।
××× दोनों को पास लाने के लिए आँखें ही
क्यों चुनि कालिदास ने ? --- घुटना क्यों नहीं ?
--- (अपने पैर का पंजा ऊपर उठाते हुए) यह खूर
क्यों नहीं ? --- क्योंकि कालिदास विश्वास करने की
सबसे बडी कसौटी मानते हैं, आँखे ।"[2]

इसके साथ ही सामुहिक क्रिया-व्यापार के अनेक अवसर प्रस्तुत नाटक के अंतर्गत आये हैं । जैसे - कलाकारों की बधाई से घिरा कुमार का पत्र पढना, छोटू का चाय-समोसे देना, हार पहनाने का मुक अभिनय, फूल फेंकने का मुक अभिनय, कनक द्वारा सुदर्शन को अंगूठी पहनाने का अभिनय आदि के द्वारा वर्मा ने आंगिक अभिनय के लिए अधिक गुंजाइश छोडी है ।

प्रतिकात्मक, प्रयोगात्मक एवं संवेदनशीलता के कारण सुरेंद्र वर्मा का 'द्रौपदी' नाटक अभिनेयता की दृष्टि से ऊँचा नाटक है । नाटक के पहले ही अंक में सुरेखा अपने परिवार के हर सदस्य का परिचय

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - शकुंतला की अंगुठी, पृष्ठ - 3*
2. *सुरेंद्र वर्मा - शकुंतला की अंगुठी, पृष्ठ - 33*

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY

कराती है । अंत में अपने पति का नाम बताती है - मनु, तब मनमोहन के अन्य चार रूप इस नाम से विरोध करते हैं । उस वक्त के संवादों से सुरेखा का चौंककर मुडना, लज्जीत होना, दोनों कानोंपर हाथ रखकर ऊँचे स्वर में बोलना, लपककर मनमोहन के पास जाना, उस वक्त मनमोहन का दोनों हाथों से मुँह छिपा लेना इन बातों से प्रस्तुत घटना बहुत सजीव दिखायी देती हैं । जैसे -

"सुरेखा : ... मेरे एक पति हैं नाम है उनका मनमोहन ...
मुझे कोई आपत्ति नहीं ।
चारों नकाबवाले : लेकिन हमें आपत्ति हैं ।
(चौंककर मूडती है)
सुरेखा : यह क्या प्रलाप है ? ... कौन हो तुम लोग ?
चार नकाबवाले : हम वही हैं । जो (मनमोहन की ओर संकेत सहित) यें हैं ।
सुरेखा : (दोनो कानोंपर हाथ रख, ऊँचे स्वर में) चुप रहो,
ऐसे पाप के बोल मत बोलो । - मेरा रोम-रोम सुलगने लगता है
तुम्हारी बातें सुनकर - (लपककर मनमोहन के पास आती है ।)
××× (मनमोहन दोनों हाथों में मुँह छिपा लेता है ।)"[1]

प्रस्तुत नाटक के आठवें दृश्य में राजेश अपनी प्रेमिका अलका का इंतजार कर रहा है । उसी के इंतजार में सिगरेट पीते हुए बार-बार कलाई की घडी देख रहा है । जब अलका आ जाती है तब दोनों एक दूसरे का हाथ थाम लेतें हैं और बेंच पर बैठते हैं । राजेश सिगरेट का एक लम्बा कश खिंचता है और उसका धुआँ अलका के मुँह पर छोड देता है । इस प्रकार अलका का मुँह पर आए धुएँ को हटाने के लिए अपना हाथ हिलाना, राजेश के बाल सहलाना, गालों पर ऊँगलियाँ फेरना, आदि शारीरिक क्रियाओं द्वारा उन्होंने नाटक में जान भर दी है ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक के प्रत्येक दृश्य में अंगिक अभिनय दृष्टिगोचर होता है । मनमोहन द्वारा खाने का अभिनय करना, पैर पटकना, मंदा का मेकअप करने का अभिनय, मनमोहन का परेशानी से टहलने का अभिनय आदि के द्वारा नाटककार ने नाटक में जीवन्तता लाने का प्रयास किया है ।

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - द्रौपदी, पृष्ठ - 75*

सुरेंद्र वर्मा के 'सेतुबंध' नाटक में अंगिक अभिनय को प्रच्युर मात्रा में स्थान नहीं मिला । संपूर्ण नाटक शांत-सुलगती धारा में बहता हुआ दिखायी देता है । कुछ ही जगहों पर पात्रों के क्रिया व्यापार द्वारा अंगिक अभिनय का दर्शन होता है । जैसे - विभावती का कंधेपर हाथ रखकर रंगमंच पर प्रस्तुत होना, प्रवरसेन की सांत्वना करते समय विभावती द्वारा उसके कंधों को सहलाना, ग्रंथ को उठाने का अभिनय, पन्ने पलटाने का कार्य, सेनापति का झुककर नमन करने का अभिनय आदि प्रसंगों में घटित क्रियाओं के द्वारा अंगिक अभिनय को दर्शित किया गया हैं ।

'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक में सुरेंद्र वर्मा ने प्रमुख पात्रों को जीवन्त और स्वाभाविक बनाने के लिए अंगिक अभिनय का कलात्मक उपयोग किया है ।

प्रस्तुत नाटक के प्रथम अंक के तीसरे दृश्य में ओक्काक पत्नी शीलवती के कारण बहुत अस्वस्थ है, क्योंकि उसे 'नियोग विधि' के लिए जाना था । इस कारण ओक्काक को भवन की हर चीज मुरझाई नजर आ रही थी । निम्नांकित क्रियाओं द्वारा ओक्काक की निराशा दृष्टिगोचर होती है -

"ओक्काक : राजप्रासाद के कर्मचारियों को क्या हो गया है ?
××× अभि उद्यान में देखा कि वापिका के ऊपरी किनारों पर हल्की सी काई जम गई है, --- और अब यहाँ देख रहा हूँ कि मदिरा में मक्षिका है और चषक पर धूल की तह ... (मुस्कान सहित चषक पर ऊँगली से लकीर खींचते हुए)

महत्तरिका : क्षमा करें, महाराज । मैं अभी ... ।
(बढती है । ओक्काक वर्जना का हाथ उठाता है । दूसरे पात्रसे दूसरा चषक भरता है । एकाध घूँट लेता है । महत्तरिका पास आ जाती है । पहले चषक को दूकूल से पोंछने लगती है ।)"[1]

इस तरह नाटक के प्रत्येक दृश्य में बहुत ही कलात्मक ढंग से नाटककार ने अंगिक अभिनय को दर्शाने का प्रयास किया है । ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें अंगिक अभिनय देखने को मिलता है । जैसे -

---

1. सुरेंद्र वर्मा - सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, पृष्ठ - 16

ओक्काक का विस्मरण के कारण दोनों हथेलियों से माथा ठोकना, ओक्काक का भर्राये हुए स्वर में दोनों हाथ ऊपर करके भगवान को बुलाना, धर्मनटी शब्द सुनकर दोनों कानों पर हाथ रखना, आर्य प्रतोष का निर्णय सुनकर विव्हल शीलवती का घुटनों पर बैठकर, उसके दोनों परों को घेरकर बाहों में लेना, वियोग विधि के पश्चात भेद और मंथर गति से शीलवती के चलने का अभिनय आदि घटनाओं में नाटककार ने अंगिक अभिनय को बहुत ही कल्पकता के साथ दिखाया हैं।

उपर्युक्त नाटकों के द्वारा नाटककार ने अंगिक अभिनय दिखाकर नाटकों के स्तर को उन्नत बनाने में सफलता प्राप्त की हैं। इससे नाटकों में कलात्मक सजीवता स्पष्ट रूप से दिखायी देती हैं।

3.6.2 वाचिक अभिनय :

रंगमंचपर अभिनेता को लेखक के विचारों को दर्शकों तक पहुँचाने के लिए बोलना तो अवश्यक है ही। अर्थात जब अभिनेता अपने मुख से जो कुछ कहता है वह सब का सब वाचिक अभिनय ही कहलाता है। नाटक छोडकर साहित्य के अन्य प्रकारों में प्राणियों और कृत्रीम साधनों का वर्णन किया हुआ दिखायी देता है। परंतु नाटक एक साहित्य का दृश्य-काव्य प्रकार है। जैसे चिडियों कि बोली बोलना, मुँह से सीटि की ध्वनि निकालना, या जानवरों को हाँकते हुए चहकारी देना आदि का सिर्फ वर्णन ही नहीं बल्कि प्रयोग भी करना पडता हैं। इस प्रकार मुख से निकली हुई ध्वनियाँ वाचिक अभिनय के अंतर्गत आती हैं।

भरत ने वाचिक अभिनय के लिए तिरसठ लक्षणों और उनके गुण-दोषों का भी बडे विस्तार से वर्णन किया है। वाचिक अभिनय का सबसे बडा गुण है - "वाणी के आरोह, अवरोह के द्वारा कहा हुआ वाक्य अपने भाव और प्रभाव को बनाए रखें।"[1] उपर्युक्त कथन के आधार पर सुरेंद्र वर्मा के नाटकों में स्थित वाचिक अभिनय हम इस प्रकार से देखते हैं -

'आठवाँ सर्ग' नाटक में प्रियंवदा और कीर्तिभट्ट के बीच प्रेमभरे संवाद वाचिक अभिनय के लिए अच्छा उदाहरण है। कीर्तिभट्ट प्रियंवदा से प्यार करता है, उसके सामने अपने प्रेम का इज़हार एक मास के विरह के बाद कर रहा है। उसके संवादों में उच्चारण संबंधी जो तरिका है वह बहुत ही सराहनीय हैं। उसके

---

1. *पं. सिताराम चतुर्वेदी - भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, पृष्ठ - 243*

कथन से यह बात स्पष्ट होती है - ''गोधूलि - बेला थी, शिप्रा का किनारा ... अपने-अपने घोसलों को लौट रहे पक्षीयों का मधुर कलख ... किनारे से टकराती हुई लहरों का सरस संगीत ... नवमालिका की कलियों की, प्रणय की, मीलन की ... तभी देखा कि तुम चम्पक के घुरमुटों के बीच ... हाथ में लीला-कमल लिए मन्द मंथर गति से सकुचाती - लजाती ... ।''[1]

इस कथन से कीर्तिभट्ट की काव्यमय भाषा का आनंद पाठकों को मिलता है । प्रस्तुत नाटक के इसी अंक में प्रियंवदा और अनसूया के वार्तालाप दृष्टव्य हैं -

''प्रियंवदा	:	(कार्यरत) अनसूये !
अनसूया	:	(कार्यरत) प्रियंवदे !
प्रियंवदा	:	(अर्थपूर्ण स्वर में) शयनागार देखा ?
अनसूया	:	देखा !
प्रियंवदा	:	क्या - क्या ?
अनसूया	:	(कृत्रिम भोलेपन से) वहीं जो हर दिन देखती हूँ ...
		भित्तियाँ, गवाक्ष, आसन, पलंग, मदिराकोष्ठ, श्रृंगार कोष्ठ...
प्रियंवदा	:	कुछ विशेष नहीं, सुन्दरी ?
अनसूया	:	नहीं तो ! ... ऐसा क्या है, सुमुखि ?''[2]

उपर्युक्त संवाद व्याकरण से परिपूर्ण हैं । उनमें लयता तथा उच्चारण आरोह-अवरोह के साथ हो गया है । एक - दूसरे को विशेषण युक्त नामों से बुलाकर नाटककार ने संवादों में आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है । इस अभिनय के संदर्भ में जयदेव तनेजा का मत द्रष्टव्य हैं - ''यहाँ अभिनय की दृष्टि से प्रियंवदा अनसूया के चपल-चंचल, हल्के मनोरंजनात्मक अभिनय देखने को मिलते हैं ।''[3]

कालिदास के टूटे व्यक्तित्व, विफलता, मोहभंग तथा विराग की उदासी निम्न कथन द्वारा स्पष्ट होती है - ''एक मास की रचनात्मक बेचैनी --- फिर सम्मान - समारोह से कि गई अपेक्षाएँ --- फिर भाग

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - आठवाँ सर्ग, पृष्ठ - 18*
2. *सुरेंद्र वर्मा - आठवाँ सर्ग, पृष्ठ - 21*
3. *जयदेव तनेजा - समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच , पृष्ठ - 91*

दौड --- व्यस्तता और फिर --- मोहभंग --- ''[1] इस प्रकार नाटककार ने अपने संवाद कौशल के द्वारा वाचिक अभिनय को सरस, सफल बनाने का बहुत ही कलात्मक प्रयास किया है ।

सुरेंद्र वर्मा का 'शकुंतला की अंगूठी' नाटक मूलत: रंगकर्मियों के जीवन से संबंधित होने के कारण इस में अच्छे रंगकर्मी जानभर सकते हैं । जैसे नाटक के आरंभ में ही कुमार द्वारा सुत्रधार की प्रस्तावनाका जोर से पढना और चमन का ''एमेचर हिंदी थिएटर की देखो यह माया, हो गया वक्त रिहर्सल का पर कोई नहीं आया ।''[2] यह गीत, ताल, संगीत, नृत्य और सूर के साथ गाना । इस गीत के माध्यम से नाटककार ने प्रत्येक रंगकर्मी के चरित्र का व्यंग्य प्रस्तुत किया है । प्रस्तुत नाटक में पात्रों के अंतरिक संघर्ष में भावनाओं के साथ साथ बाह्यसंघर्ष के उदाहरण विद्यमान हैं । जैसे -

''कुमार : जरूरत है मुझे भी । लेकिन उसकी कीमत भी बहुत बडी हैं ।

कनक : यानी जरूरत से ज्यादा ।

कुमार : (नाराजगी से) मैं बनिए की तरह हिसाब करके नहीं देखता कि कितना कम है और कितना ज्यादा ।

कनक : तुम्हारा हिसाब बनिए से भी बदतर है ।

कुमार : जो बनिए की तरह सौदा करता है, उससे बदतर और कौन होगा ?

कनक : क्या सौदा किया है मैंने ?

कुमार : कि तुम शादी कर लो और फिक्र मत करो किसी चीज की ।

(कनक आहत भाव से देखती रह जाती है ।)

कनक : तुमने मुझे इतना घिनौना ताना दिया ? ...''[3]

नाट्यांतर्गत संघर्षों के साथ पात्रों के व्यक्तिगत जीवन की झाँकिया भी नाटककार ने अपनी कल्पकता के सहारे चित्रित करने का प्रयास किया है ।

सुरेंद्र वर्मा के आधुनिक नाटक 'द्रौपदी' ने रंगमंच एवं अभिनय में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है । प्रस्तुत नाटक में चित्रित अभिनय पात्रों की मन:स्थिति पर गहरा प्रकाश डालता है । इस नाटक में चार

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - आठवाँ सर्ग, पृष्ठ - 42*
2. *सुरेंद्र वर्मा - शकुंतला की अंगूठी, पृष्ठ - 42*
3. *सुरेंद्र वर्मा - शकुंतला की अंगूठी, पृष्ठ - 89*

नकाबवालों का अभिनय प्रतिकात्मक रूप में लिया गया हैं । नाटककार ने नायक मनमोहन को सामान्य रूप से घरेलू जीवन में स्थित दिखलाते हुए चार मुखौटें लगाकर उपस्थित किया है । इस बीच फँसी हुयी सुरेखा की स्थिति बहुत दयनीय हैं, उसका अभिनय मंदा के साथ हुए वार्तालाप से पूर्णत: स्पष्ट होता है - ''विवाह के पश्चात अब वो आदमी एक नहीं एक से ज्यादा है । जैसे उसके हिस्से हो गए है, अलग-अलग और कभी एक से उसका सामना होता है, और कभी दूसरे से ।''[1]

प्रस्तुत कथन से सुरेखा के खंडित मनस्थिति के दर्शन होते हैं । नाटककार ने मनमोहन के नकाब परिवर्तन के अंतर्गत अत्यंतिक कुशलता से काम लिया है । सफेद नकाबवाले का मनमोहन के सभ्य, शिक्षित, सद्वृत्तियोंवाला उज्ज्वल व सुसंस्कृत रूप है जो अपने अभिनय की पुनरावृत्ति का प्रचलन करके लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करता है । जैसे - ''जब भी तुमने झूठ बोला, जब भी तुमने बेईमानी की, जब भी तुमने कायदा तोडा, जब भी तुमने पाबंदी नहीं मानी ------ तुम्हारी हर खुदगर्जी, हर ओछापन, हर जलालत एक जख्म बनकर आता गया मुझपे - और अब देखो, मेरा पूरा बदन छलनी हो चूका है । × × × × तुमने गर्भ रह जाने पर भी कल्पना से शादी नहीं की और मेरी एक आँख चली गयी । × × × × जैसे - जैसे तुम बाँटते गये, वैसे - वैसे घटते गये । - लेकिन याद रखो कि जब तक मेरी दम में दम है, तब - तक मैं तुम्हारा पीछा । -----''[2]

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने नकाब परिवर्तन में जो कुशलता दिखायी हैं उसपर डॉ. रिताकुमार का मत समाचीलन लगता हैं - ''इसमे 'द्रौपदी' सबसे नया और सार्थक प्रयोग चार नकाब पात्रों का है ।''[3]

सुरेंद्र वर्मा का 'सेतुबंध' नाटक पात्रों की मन:स्थिति का चित्रण करता है । प्रवरसेन की माँ प्रभावती के विवाह के पूर्व कालिदास से प्रेम संबंध थे । इस का पता जब प्रवरसेन को लगता है तब वह अपनी रचना 'सेतुबंध' को सर्वश्रेष्ठ मानने से इन्कार करने लगता है । क्योंकि उस रचना का सर्वश्रेष्ठ रचना के रूप में सम्मान कालिदास ने ही किया था और प्रवरसेन का सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में । लेकिन प्रवरसेन का मन इस बात से आशंकित था कि अपनी प्रेमिका का पुत्र होने के कारण ये दोनों सम्मान मुझे तोफे में मिले हुए होंगे । इसलिए वह बहुत नाराज है । अपनी प्रतिभा और विद्वत्ता के प्रति उसे संकोच होने लगता है । इस संदर्भ में माँ -बेटे का कथन दृष्टव्य है -

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - द्रौपदी, पृष्ठ - 102*
2. *सुरेंद्र वर्मा - द्रौपदी, पृष्ठ - 115*
3. *डॉ. रिताकुमार - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में, पृष्ठ - 98*

"प्रवरसेन : (आवेश के साथ) माँ । क्या वास्तव में मैं एक सर्वश्रेष्ठ कवि हूँ ? क्या सचमूच सेतुबंध उत्कृष्ट महाकाव्य है ?

प्रभावती : (आश्वस्त होती है) हाँ - क्यों नहीं ? ... राज्य के सारे काव्य रसिक उसकी सराहना कर चुकें हैं । चोटी के साहित्यिकों के बीच वह व्यापक चर्चा का विषय रहा हैं । विद्वत् - परिषदने उसे मान्यता दी है । ××× और साहित्य सभाओं में .....

प्रवरसेन : (आवेश में) माँ ... मैं केवल सहृदय कवि ही नहीं, शक्तिशाली शासक भी हूँ । मेरे हाथ में सत्ता हैं । ये सारे साहित्यिक संस्थान मेरी रचना के साथ कालिदास का भावात्मक लगाव है ? क्योंकि मैं कालिदास की प्रेयसी का पुत्र हूँ ? क्योंकि सेतुबंध वह सेतु है, जो कालिदास के नीरस वर्तमान को उनकी सरस भावना से जोडता है ।"[1]

उपर्युक्त संवादोंद्वारा प्रवरसेन और प्रभावती की अंतरिक घुटन एवं पीडा स्पष्ट रूप में दिखायी देती है । यह उनके सजीव और कलात्मक अभिनय का नमूना है ।

'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक द्वारा नाटककार ने नियोग प्रथा से पाठकों का साक्षात्कार कराया है । राज्य के लिए उत्तराधिकारी प्राप्त करने की दृष्टि से रानी को 'नियोग' विधि के लिए बाध्य किया जाता है । शारीरिक सुख के आभाव में जीवन की संपूर्णता को तरसती रानी शीलवती भयंकर आंतरिक पीडा सहन करती हैं । उसे कुल मर्यादा का प्रश्न आतंतिक रहता है । इसी अन्तर्द्वन्द्व में वह राजा ओक्काक की सहमती और आमात्य - परिषद के आज्ञा के सामने झुककर नियोग के लिए शीलवती राजी हो जाती है । शीलवती नियोग विधि अवलंब कर के सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक अपने पुराने प्रेमी वाग्दत्त आर्य प्रतोष को उपपति के रूप में स्वीकार करती हैं । विवाहोतर पाँच सालों में मनोवैज्ञानिक काम सुख से वंचित शीलावती आर्य प्रतोष के साथ रात गुजारने के बाद जिस निष्कर्ष पर पहुँचती है वह उसी के कथन द्वारा स्पष्ट होता है - "क्या करूँ ! ---- भरी गगरी की तरह छलकी - छलकी जा रही हूँ ---- इतना सुख, इतनी सीरहन, इतना रोमांच (सीत्कार सहित) कल रात कितनी बडी

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - सेतुबंध, पृष्ठ -*

क्रांति हुई मेरे जीवन में ---- मेरे तन - मन का इतिहास ही बदल गया है ... ××× उस आवेग और आकुलाहट में ...उस उत्तेजना और उन्माद में ××× नारी की सार्थकता मातृत्व में नही हैं महामात्य ! है केवल पुरुष के उस संयोग में मातृत्व केवल एक गौण उपादान है । ... जैसे दही से निकलता तो मक्खन, लेकिन तलछट में थोडी सी छाछ भी बच जाती है ... (संकेत सहित) हम सब छाछ है छाछ ...."[1]

इस प्रस्तुत संवाद से शीलवती के मन की कटुता, तिक्तता, कुंठा और संत्राम उभारा है । उसके क्रियाव्यापार और अभिनय के संदर्भ में जयदेव तनेजा लिखतें हैं - "शीलवती की संवादों की द्रुतगति उसकी मानसिकता, खंडित स्थिति और आवेश को सूचित करता है ।"[2]

इस प्रकार सुरेंद्र वर्मा के नाटको में वाचिक अभिनय स्पष्ट होता है, जिससे नाटक अपनी योग्यता को कम नहीं होने देता ।

3.6.3 सात्विक अभिनय :

अभिनय क्षेत्र में सात्विक अभिनय को सबसे श्रेष्ठ माना गया है । जो रजोगुण और तमोगुण विरहीत सत्वशील हैं उन्हें सात्विक भाव कहते हैं । आंगिक, वाचिक एवं आहार्य अभिनय करते समय पात्रों को इस आवस्था का अभिनय करना पडता है कि जो उसके मनोभावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति बन सकें, तो वह सात्विक अभिनय द्वारा ही संभव है । इसमें शोक, हर्ष आदि के प्रभाव से तत्काल अश्रु निकल आते हैं और रोमांचित हो जाते हैं । सत्व से उत्पन्न होने के कारण उन्हें भाव कहलाया जाता है और साथ ही आश्रय के विचार होने के कारण अनुभाव भी कहा जाता है । यह भाव आठ होते हैं । जैसे - स्थंभ (अंगों की निष्क्रियता या स्थिरता), प्रलय (चेतना का लोप होना), रोमांच, स्वेद, वैवरण्य (मुँह का रंग उड जाना), कंप, अश्रु तथा वैषवर्य (आवाज में परिवर्तन) इन्हीं आठों सात्विक भावों से युक्त अभिनय को सात्विक अभिनय कहते हैं । भरत ने सात्विक अभिनय को प्रधान बताते हुए कहा हैं - "जिस अभिनय में सात्विक अभिनय की अधिकता होती है वह जेष्ठ कहलाता है, जिसमें सात्विक भी अन्य अभिनयों के समान होता है वह मध्यम कहलाता है, जिसमें सात्विक अभिनय नहीं होता वह अभिनय अधम कहलाता है ।"[3]

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, पृष्ठ - 49-52*
2. *जयदेव तनेजा - समकालीन हिंदी नाटक व रंगमंच, पृष्ठ - 92*
3. *पं. सीताराम चतुर्वेदी - भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, पृष्ठ - 345*

सुरेंद्र वर्मा के विवेच्य नाटको में सात्विक अभिनय निम्नांकित रूप में दृष्टिगोचर होता है -

'आठवाँ सर्ग' नाटक सात्विक अभिनय की दृष्टिसे सब से महत्त्वपूर्ण है । प्रस्तुत नाटक में कालिदास द्वारा रचित ग्रंथ 'कुमार संभव' पर धर्माध्यक्ष अश्लीलता का आरोप लगाते हैं । इससे कवि कालिदास का उज्जयिनी शासन की ओर से होनेवाला सम्मान - समारोह स्थगित किया जाता है । इससे कालिदास का मोहभंग हो जाता है । इस मोहभंग और अपमान की व्यग्रता से कालिदास अंतर्बाह्य टूट जाता है । कालिदास के ग्रंथ का आठवाँ सर्ग अश्लील हैं या नहीं इस प्रश्नपर विचार करने के लिए एक न्याय समिति बनायी जाती है । इस स्थिति के सामने जाने से पहले धर्माध्यक्ष कालिदास को एक सलाह देतें हैं कि - "अगर आप जनता के धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के कारण न्यायालय के सामने क्षमायाचना करें तो इस पर हम विचार करने का आश्वासन देते हैं ।" [1] क्षमा - याचना शब्द सुनते ही कालिदास के आत्मसम्मान को बडी ठेंस पहुँचती हैं । एक महीने की रचनात्मक बेचैनी के बाद हुआ अपेक्षा भंग उनके इस कथन द्वारा स्पष्ट होता है - "(चौंककर) क्या ? लेखक क्षमा-याचना करें ? ... आपने यही कहा हैं नं ? ××× (फूट पडता है) एक शताब्दी में भी नहीं ! ... मैं वहाँ जाऊँगा ? तुम्हारी उस अंधि समिति के सामने ? (आदेशपत्र धर्माध्यक्ष की तरफ भूमिपर फेंकता है ।) ... तूम मतिमंदों को मनाने ? समझाने ? ... अरे धर्माध्यक्ष ! मैं विष खा लूँगा ... डूब मरूँगा शिषा में ... लेकिन किसी भी मूल्य पर .... " [2]

कालिदास द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त कार्य-व्यापार उसके मन के आहत अभिमान, एकाकी पड जाने की विफलता, मोहभंग टूटे व्यक्तित्व की सफल मंचीय अभिव्यक्ति हैं ।

'शकुंतला की अंगूठी' नाटक में सात्विक अभिनय का एक सजीव उदाहरण दिखायी देता है । कनक एक नील नामक युवक से प्यार करती थी । नील उसे नौकरी के बहाने छोडकर चला जाता है । धोखे के कारण चोट खाई कनक पूरी तरह से टूट जाती है । और वह आहत भरी नजरों से उसे देखती ही रहती है । इन दोनों के संवादों की साह्यता से उपर्युक्त घटना का साक्षात्कार होता है । जैसे -

"कनक : तुमने मुझे झूठ बोला ?

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - आठवाँ सर्ग, पृष्ठ - 48*
2. *सुरेंद्र वर्मा - आठवाँ सर्ग, पृष्ठ - 49*

नील : तुम इस तरह पडी थी मेरे पीछे कि मेरे मुँह से झूठ निकल गया ... और लिखा मैने इसलिए नहीं कि अभी मैं शादी करना नहीं चाहता ।

कनक : (आहत होकर) इसका मतलब तुमने यह भी झूठ कहा था कि तुम मुझे चाहते हो ?

नील : मैं तुम्हें चाहता हूँ, ऐसा शादी के बिना सच नहीं हो सकता ?

कनक : मैं समझ रहीं हूँ कि तुम गिरगिट की तरह रंग क्यों बदल रहे हो ? ××× कि कलकत्ते में बेहत्तर नौकरी मिल रही है, तो तुम बेहतर मौकों के लिए अपनी आजादी बनाए रखना चाहते हो ।

नील : अगर मैं ऐसा महसूस कर रहा हूँ, तो कहीं कुछ कमी है मेरे लगाव में । तब फिर मुझसे ऐसी उम्मीद क्यों रख रही हो जिसका पूरा होना .... (कनक आक्रोश से उसे देखती है ।)

कनक : कितने नीच हो तुम ..." [1]

'द्रौपदी' नाटक रंगमंचीय दृष्टि से एक सफल नाटक हैं । प्रतिकात्मकता एवं प्रयोगशीलता के कारण 'द्रौपदी' अभिनेयता की दृष्टि से एक महान नाटक बन गया हैं । प्रस्तुत नाटक में चार नकाबवालों के प्रयोग के कारण सुरेखा का चरित्र बहुत ही सजीव दिखायी देता है ।

नाटक की शुरूआत में ही रंगमंच पर सुरेखा का सामनाचार नकाबवालों से होता है जो मनमोहन के चार विभिन्न स्वभाव रूप है । उनका भी यही दावा हैं कि सुरेखा हमारी पत्नी है । बातें सुनकर सुरेखा के सात्विक गुणों को धक्का पहुँचता है । अपना पावित्र्य और पातिव्रत्य नष्ट हो जाने के कारण वह बहुत लज्जीत हो जाती है । उपर्युक्त प्रसंग निम्नांकित संवादों के द्वारा स्पष्ट होता है -

"सुरेखा : मेरे एक पति हैं । नाम है उनका मनमोहन । निकट के लोगो ने उसे मनि कर दिया है । आप लोग चाहें तो कह सकते हैं यही - मुझे कोई आपत्ति नहीं ।

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - शकुंतला की अंगूठी, पृष्ठ - 55*

चार नकाबवालें : लेकिन हमें आपत्ति है ।

(सुरेखा चौंकर मुडती है)

सुरेखा : यह क्या प्रलाप है ? कौन हो तुम लोग ?

चार नकाबवाले : हम वही हैं, जो (मनमोहन की ओर संकेत सहित) ये हैं ।

सुरेखा : (खीझी हुई) लज्जा नहीं आती तुम लोगों को ? ये मेरे पति हैं)

चार नकाबवाले : हम भी वही हैं ।

सुरेखा : (दोनों कानोंपर हाथ रख, ऊँचे स्वर में) चूप रहो ! ऐसे पाप के बोल मत बोलो । मेरा रोम - रोम सूलगने लगता है तुम्हारी बातें सुनकर । (सफेद नकाबवाला एक ओर हट जाता है । शेष तीनों हँसते हैं ।)

सुरेखा : (रूधे स्वर में) मोहन ।"[1]

इस प्रकार सुरेखा की अपने पतिव्रता के प्रति तिलमलाहट उसके आँसुओं तथा तडफ की साध्यता से स्पष्ट करने का सफल प्रयास सुरेंद्र वर्मा ने किया हैं ।

'सेतुबंध' नाटक सात्विक अभिनय की दृष्टि से एक सफल नाटक है । प्रसतुत नाटक में पात्रों की मन:स्थिति का स्पष्ट रूप दिखायी देता है, जिस से पात्रों के रज एवं तम् विरहित भाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं । विवाह पूर्व स्थित प्रेमसंबंध के केंद्र बिंदु कालिदास और प्रभावती इनके प्रेम की असलियत जब प्रवरसेन को मालूम होती है तब उसका मन अपने माँ के प्रति आरोपित बन जाता है । उस समय से वह अपनी माँ के प्रति आरोपित बन जाता है । उस समय से वह अपनी माँ प्रभावती को धिक्कारने लगता है । विवाहित होकर भी परपुरूष को चाहना यह बात प्रवरसेन के दिल को अच्छी नहीं लगती थी । तब इस संदर्भ में वह अपनी माँ के साथ बडी धृष्टता के साथ चर्चा करने लगता है । माँ घटित हुयी सभी बातों को उसके सामने रख देती है फिर भी प्रवरसेन प्रभावती को माँ के रूप में स्वीकार करने से हिचकिचाने लगा । प्रभावती के कथन द्वारा यह बात स्पष्ट होती है - "(मंद मुस्कान से) उन दिनों मैं हँसना भूल गई थी, वरना कहती पिताश्री ! इस अंतिम उपाधि में कुछ गडबड हो गयी हैं - सिक्केपर चित्र होना चाहिए - ब्याह की बेदी पर मेरा बलिदान और निचे सुनहरे अक्षरो में उपाधि - प्रभावती दमन कर्ता ... । ××× (पाण्डुलिपि

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - द्रौपदी, पृष्ठ - 75*

वक्ष से लगा लेती है । विव्हल होकर) कौन समझेगा की मेरी भावना आज तक कुमारी हैं ... मैं माँ बनी हूँ लेकिन पत्नी नहीं ।"[1]

इस प्रकार विभावती के कथन से उसके मातृत्व और पतित्व के लिए उसकी विवशता तथा विव्हलता के स्पष्ट दर्शन होते हैं ।

'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक में नाटककार ने नपुंसकता के कारण दाम्पत्य जीवन में प्रत्युक्त होनेवाली घुटन, खीज तथा पति की असहाय अवस्था का समसामायिक धरातलपर चित्रण किया है । प्रस्तुत नाटक में शीलवती एवं ओक्काक को आमात्य परिषद के सामने नियोग विधि के लिए झुकना पडता हैं । महामात्य महाबलाधिकृत और राजपुरोहित महाराज ओक्काक से आज्ञा लेने आतें हैं तब ओक्काक की मानसिक स्थिति का पतन उसके कथन द्वारा स्पष्ट दिखता है -

"राजपुरोहित : (ओक्काक से) कहिए मैं ... (शीलवती की ओर संकेत सहीत) आपको आज की रात के लिए सूर्य की ××× उपपति चुनने का अधिकार देता हूँ ।
विराम ।

महामात्य : (अधिक निकट आते हुए, धीमे स्वर में) समय हो रहा है महाराज ।

ओक्काक : (तीनों की ओर देखता है । घूँट सा भरकर) अधिकार देता हूँ ।

राजपुरोहित : कृपया पूरा वाक्य कर दीजिए ।

ओक्काक : (यकायक फूट पडता है ।) कह तो दिया है । (झपटकर कोष्ट तक जाता है । चषक में मदिरा ढालता है । गटागट पीने लगता है ।)"[2]

उपर्युक्त वार्तालाप से ओक्काक की पीडा, मानसिक घुटन, छटपटाहट, टूटन और ग्लानी आदि बातें सजीव हो उठी हैं ।

इस प्रकार सुरेंद्र वर्मा ने सात्विक अभिनय द्वारा इन पाँच नाटकों को रंगमंचपर प्रस्तुत किया है । सात्विक अभिनय की दृष्टि से सभी नाटक सजीव एवं सफल बन पडे हैं ।

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - सेतुबंध, पृष्ठ - 32-35*
2. *सुरेंद्र वर्मा - सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, पृष्ठ - 24*

3.6.4 आहार्य अभिनय :

आहार्य अभिनय के अंतर्गत पात्रों की वेशभूषा, आभूषणों, वस्त्रों तथा विभिन्न प्रकार की रूपसज्जा का उल्लेख रहता है । शरीर को विभिन्न रंगों से सजाने की विधियाँ इसी का अंग है । पात्रों की योग्य वेशभूषा, अलंकार और अंग - रचना अर्थात मेकअप, केश-रचना आदि का समावेश इस अभिनय के अंतर्गत होता है । प्रसंग या घटना के अनुरूप वेश-भूषा ही नाटक में सजीवता ला सकती है । इसलिए प्रसंग या घटनाओं के आधार पर ही पात्रों का आहार्य अभिनय आवश्यक हैं ।

सुरेंद्र वर्मा आधुनिक नाटककारों में एक ऐसे नाटककार हैं, जिन्होंने मंचीय तकनीक के साथ अपनी नाट्य कला को बडी खूबी के साथ मिलाया हैं । उन्होंने अपने नाटक 'आठवाँ सर्ग' में इस अभिनय संबंधी वेशभूषा एवं रूपसज्जा विषयक स्वतंत्र रूप में कुछ अधिक सामग्री भले ही न दी हो किंतु "नूपुर हाथ में वस्त्रखंड "[1] जैसा संकेत नाटककार ने अवश्य दिया है । प्रसंग के आधार पर कालिदास के रूप एवं वेशभूषा का अभिनय उस प्रसंग की उपयुक्तता पेश करता है । कालिदास की सर्वश्रेष्ठ रचना 'कुमार संभव' पर अश्लीलता का आरोप लग जाता है तब अपमान और अपेक्षाभंग के कारण कालिदास की अवस्था का वर्ण नाटककार ने इन शब्दों में किया हैं - "... (वस्त्र कुछ मलिन, बाल कुछ बीखरे, प्रियंगु उदास मुस्कान से उसकी तरफ देखती रहती है । निकट आती हैं । माथे पर बिखरे बालों को पीछे हटाती है । कोमल स्वर में) सुनो .. तुम बहुत थक गये हो । ---- चलो विश्राम करो ! "[1]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि कालिदास के टूटे आत्मविश्वास, मानसिकता का हनन तथा साहित्यकार की स्वतंत्र्यता पर राज्यश्रितों ने किये प्रहार के कारण कालिदास पूर्ण टूटा नजर आता है । इस प्रसंग के द्वारा नाटककार ने आहार्य अभिनय को दिखाने का प्रयास किया है ।

'शकुंतला की अंगूठी' नाटक में नाटककार ने आहार्य अभिनय संबंधी पात्रों के वेश-केश एवं रंग-भूषा संबंधी निम्नांकित संकेत दिए हैं - "टाईगर का प्रवेश । उसके आदर्श हिंदी फिल्मी नायक । वैसी ही वेश-भूषा, वैसी ही चाल-ढाल ।"[2] और "निरंजन का प्रवेश । छोटी सी दाढी ।"[3]

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - आठवाँ सर्ग, पृष्ठ - 42*
2. *सुरेंद्र वर्मा - शकुंतला की अंगूठी, पृष्ठ - 3*
3. *सुरेंद्र वर्मा - शकुंतला की अंगूठी, पृष्ठ - 5*

प्रस्तुत नाटक के सारे चरित्र आधुनिक युग के विशेषकर 'ब' वर्ग के महानगरीय निवासी हैं । अत: स्पष्ट हैं पुरूषों के लिए जीन पँट, शर्ट, टाय, जॉकिट, कोट, बुट आदि और स्त्रियों के लिए ऊँची साडियाँ या सलवार, कमिज तथा नए फॅशन की ड्रेसिस, सेठानी की ऊँची फिर भी प्रौढ व्यक्तिवाली वेश-भूषा और मॅनेजर का थ्री-सूट में होना अवश्यक हैं । इस प्रकार सुरेंद्र वर्मा ने प्रस्तुत नाटक में आहार्य अभिनय संबंधी संकेत दिए हैं ।

'सेतुबंध' नाटक में नाटककार वर्मा ने आहार्य अभिनय के संबंध में कुछ विशेष निर्देश नहीं दिए हैं । किंतु नाटककार की अपेक्षा यह है कि नाटक पूर्ण रूप से ऐतिहासिक एवं गुप्तकालीन रूपसज्जा तथा रंग-वेश-भूषा में प्रदर्शित हो ।

'सूर्य की अंतिम किरण से .... तक' नाटक के अंतर्गत नाटककार वर्मा ने आहार्य अभिनय का एक सजीव उदाहरण स्पष्ट किया है ।

प्रस्तुत घटनाक्रम अंधकार में घटित हो रहा है । लेकिन वस्त्रों, अलंकारों एवं साँसों की आवाजों के कारण मंचपर चली रति-क्रीडा का आभास बडी आसानी से दर्शकों को चल जाता है । निम्नांकित प्रसंग में आहार्य अभिनय को बहुत कलात्मक प्रयोग से नाटककार ने दिखाया है -

"प्रतोष : आधी रात बीत गयी ... ।
शीलवती : (सजग होकर) कैसे कठोर वचन बोलते हो ... । यह कहो
की आधी रात ... और बची है ... ।
(हँसी । वस्त्रों की सरसराहट, आभूषणों की झंकार ।)
शीलवती : (गहरी साँस लेकर) पूरे चाँद की रात हैं न ... सूनो,
तनिक मेरी यह माला निकाल दोगे ? .. चुभ रही है गले में ... ।
प्रतोष : अच्छा ... करवट ले लो ... ।
(वस्त्रों की सरसराहट । आभूषणों की झंकार)"[1]

---

1. *सुरेंद्र वर्मा - सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, पृष्ठ - 44-45*

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

आहार्य अभिनय के संदर्भ में निष्कर्षता हम कह सकते हैं कि नाटककार ने इस अभिनय की माध्यम से पाठकों को काल, वातावरण का सजीव दर्शन कराने में अपनी कल्पकता का कलात्मक परिचय दिया है ।

निष्कर्ष :

अभिनय की दृष्टि से सुरेंद्र वर्मा के सभी नाटक पूर्ण रूप से सफल परिलक्षित होतें हैं । नाटककार ने अपने नाटकों को अभिनय की चारों विधियों से परिपूर्ण बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं । इससे नाटककार की प्रयोगशीलता, कल्पकता एवं सजीवता का परिचय मिल जाता है । मनावैज्ञानिक धरातलपर पात्रों की भाव - भंगिमाएँ उनके क्रिया - कलाप तथा उनके या विभाजित व्यक्तित्व को हू-ब-हू अभिव्यक्त करने मे नाटककार कामयाब हुआ है । चार नकाबों से युक्त मनमोहन का अभिनय विशेष रूप से उल्लेखनीय बन गया है ।

विवेच्य नाटकों में अंगिक के साथ-साथ वाचिक अभिनय में कुछ ऐसी विशिष्टता दिखायी देती हैं कि कभी एक ही पात्र अतीतकालीन भाषा का प्रयोग करता है तो दूसरी ओर प्रासंगिक अभिनय मे वर्तमानकालीन शब्द प्रणाली का प्रयोग करता है । कभी-कभी यह भी दिखायी देता है कि एक ही समय पर अतीत कालीन तो कुछ वर्तमानकालीन जीवन संदर्भ में विभिन्न पात्रों के विभिन्न अभिनय दिखायी पडते हैं । यह नाटककार की नाट्य संबंधी पैनी दृष्टि और वर्तमान जीवन संदर्भ की अपनी विशिष्ट सूझ-बूझ के परिचारक हैं । विवेच्य नाटकों में अंकित विविध पात्रों में भावानुकूल अभिनय के भी सहज दर्शन होते हैं जो वर्तमान जीवन संदर्भ को उजागर करने में सक्षम हैं । 'सेतूबंध', 'शकुंतला की अंगूठी', आठवाँ सर्ग' इन नाटकों द्वारा इस बात को दर्शाया गया है । 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक के माध्यम से आधुनिक स्त्री की स्वतंत्र्यता के लिए तडप तथा एक स्त्री और पुंजत्वहीन पुरूष के मानसिक द्वंद्व को बडी ट्रेजीक तीव्रता और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है ।

अंतत: स्पष्ट है कि सुरेंद्र वर्मा अपने सभी नाटकों के द्वारा अभिनय की साध्यता से दर्शकों एवं पाठकों पर अपना प्रभाव छोडने में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं । अत: उनके सभी नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल एवं महत्त्वपूर्ण बन गए हैं ।